International Journal of Advanced Educational Research
ISSN: 2455-6157
Impact Factor: RJIF 5.12
www.educationjournal.org
Volume 3; Issue 1; January 2018; Page No. 336-340

योग अंतराय एवं चित्त प्रसादन के उपाय : एक परिचय

डॉ0 श्याम सुन्दर पाल
योग विभाग, इंदिरा गॉधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय, अमरकंटक, मध्य प्रदेश, भारत।

प्रस्तावना

महर्षि पतंजलि ईश्वर के नाम और स्वरूप– चिंतन के फलस्वरूप समाप्त होने वाले अंतराय (विघ्नों) के संदर्भ मे बताते है और यह स्पष्ट करते है कि किस प्रकार साधक इन विघ्नो को समाप्त कर अपने चित्त को निर्मल कर सकता है। इसी का वर्णन करते हुए वह नौ प्रकार के अंतरायों का वर्णन करते है और उनके साथ होने वाले दूसरे अन्य पॉच विघ्नो का भी वर्णन करते है। उन विघ्नो को दूर करने हेतु वह साधक की योग्यता अनुसार विभिन्न उपायो का वर्णन करते है। इन्ही विघ्नो को योगान्तराय तथा इन्हे दूर करने के उपाय को चित्त प्रसादन का उपाय कहा है।

योग अंतराय

अंतराय का अर्थ है विघ्न या विक्षेप अर्थात चित्त मे जो भी विक्षेप होते है, चित्त अंतराय कहलाते है। महर्षि पतंजलि ने इसे निम्न प्रकार से बताया है।

''व्याधिस्त्यानसंशयप्रमादालस्याविरतिभ्रांतिदर्शनालब्ध–भूमिकत्वानवस्थितत्वानि चित्तविक्षेपास्तेऽन्तरायाः'' पा.यो.सूत्र 1/30

व्याधि, स्त्यान, संशय, प्रमाद, आलस्य, अविरति, भ्रांति–दर्शन, अलब्ध भूमिकत्व और अनवस्थितत्व ये नौ चित्त के विक्षेप है, वे ही अंतराय अर्थात विघ्नरूप है।

महर्षि व्यास –

''नव अंतरायाश्चित्तस्य विक्षेपाः सह एते चित्तवृत्ति भिर्भवंति''

ये नौ अंतराय चित्त के विक्षेप है, चित्तवृत्ति के साथ ये उत्पन्न होते है।

स्वामी हरिहरानन्द

अंतराय नष्ट होना तथा च्ति का सम्यक समाहित होना एक ही बात है ईश्वर प्राणिधान के द्वारा ये सब अंतराय दुर हो जाते है, और सात्विक निर्मल बुद्धि उगती है। ये विक्षेप योग के मल, योग के अंतराय और योग के प्रतिपक्षी कहलाते है।

1. **व्याधि–** शरीर मे किसी प्रकार का रोग, इंद्रियो मे कमजोरियॉ आना तथा चित्त मे भ्रम, उद्विग्रत आदि आ जाना व्याधि है।
2. **स्त्यान–** कार्य करने मे असमर्थ होना, अकर्मण्यता, कार्य मे अनुत्साह अथवा सामर्थ्य की कमी को स्त्यान कहते है।
3. **संशय–** योग विद्याा की वस्तु स्थिति पर विश्वास न होना तथा अपने प्रयत्न की सफलता पर आशंका करना सशंय कहलाता है।
4. **प्रमाद–** लापरवाहीपूर्वक योग साधना करना, नियमित क्रम को अधूरा छोड देना और वह बिगड भी जाए, तो भी उसकी चिन्ता न करना प्रमाद कहलाता है।
5. **आलस्य–** तमोगुण के रहने से शरीर का भारी रहना, कार्य मे मन न लगना, सुस्ती बनी रहना आलस्य कालस्य कहलाता है।
6. **अविरति–** विषयासक्ति होने से मन का विषयो मे ही लगे रहना तथा चित्त मे वैराग्य का आभाव हो जाना अविरति कहलाता है।
7. **भ्रांतिदर्शन–** किसी कारणवश अध्यात्म के दर्शन और साधन पथ का वास्तविक ज्ञान न हो पाना अथवा यह साधन उपयुक्त नही है, ऐसा भ्रांतिक ज्ञान भ्रांतिदर्शन कहलाता है।
8. **अलब्धभूमिकत्व–** निरंतर साधना करने पर भी साधक की स्थिति मे न पहुॅच पाना तथा मध्य मे ही मन के वेग का अवरूद्ध हो जाना अलब्धभूमिकत्व कहलाता है।
9. **अनवस्थिति–** चित्त का एकाग्र अथवा स्थिर न रह पाना, जिससे भूमिका तक न पहुॅच पाना और अस्थिरता के फलस्वरूप मनोभूमि का डांवाडोल बने रहना अनवस्थिति कहलाता है।

स्वामी विवेकानन्द

व्याधि

इस जीवन के उस पार जाने के लिए यह शरीर ही एकमात्र नाव है। इसे स्वस्थ रखने के लिए यत्न करना चाहिए।

स्त्यान

मानसिक जडता आने पर हमारी योगविषयक सारी रूचि खो जाती है।

संशय

इस रूचि के अभाव मे, साधना करने के लिए न तो दृढ संकल्प होगा, न शक्ति मिलेगी। उस विषय मे हमारा विचारजनित विश्वास कितना भी बलशाली क्यो न रहे, पर जब तक दूरदर्शन, दूरभ्रमण आदि अलौकिक अनुभूतियां नही होती, तब तक इस विद्या की सत्यता के बारे मे बहुत से संशय उपस्थित होगे। जब इन सब का थोडा–थोडा अभ्यास होने लगता है, तब साधक साधनमार्ग मे और भी अध्यावसायशील होता जाता है।

अनवस्थित

साधना करते–करते देखोगे कि कुछ दिन या कुछ सप्ताह तो मन अनायास ही एकाग्र और स्थिर हो जाता है, किंतु अचानक एक दिन देखोगे कि तुम्हारा यह उन्नति–स्त्रोत बंद हो गया है।

स्पष्ट है कि ये सभी विघ्न ऐसे है जो कि चित्त मे विक्षेप रूप मे उत्पन्न होकर साधना मार्ग मे आगे बढने नही देते है। अतः आवश्यकता है कि हमे इन सभी को दूर करना चाहिए और योग मार्ग पर ईश्वर समर्पण भाव से चित्त एकाग्र करनी चाहिए।

महर्षि पतंजलि ने इन चित्त अंतरायो के अतिरिक्त अन्य विघ्नो की भी चर्चा की है–

''दूःखदौर्मनस्याऽगमेजयत्व श्वासप्रश्वासा विक्षेपसहभुवः'' पा.यो.सूत्र 1/31

दूःख दौर्मनस्य, अंगमेजयत्व, श्वास तथा प्रश्वास ये पॉच विघ्न भी विक्षेपो के साथ रहते है।

स्वामी हरिहरानंद

श्वास–प्रश्वास से स्वाभाविक श्वास और स्वाभाविक प्रश्वास लेने चाहिए। अविच्छा से अर्थात् अनजाने मे ही आदमियो के जो श्वास–प्रश्वास हुआ करते है, ''वे समाधि के अंतराय है किंतु समाधि के अंगभूत श्वास–प्रश्वास जो–जो वृत्तिरोधकारी, प्राणायामिक प्रयत्न से किए जाते है, वे विक्षेप के सहजात नही भी हो सकते।''

स्वामी ओमानन्द तीर्थ

''दुख, दौर्मनस्य, अंगमेजयत्व, श्वास–प्रश्वास ये विक्षेपो के साथ होने वाले है, अर्थात उनके होने से ये पॉच विघ्न भी उपस्थित हो जाते है।''इनका वर्णन इस प्रकार है–

1. **दुःख–** अर्थात् कष्ट ये तीन प्रकार के होते है– आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक।
   क) आध्यात्मिक दुःख– राग, द्वेश, काम–क्रोध, भय–चिन्ता आदि होने से मन, इद्रियां और शरीर मे जो विकलता एवं वेदना होती है, उसी का नाम आध्यात्मिक दुःख है।
   ख) आधिभौतिक दुःख– शत्रु, दस्यु, शेर, सर्प, मच्छर आदि द्वारा होने वाले कष्टो को आधिभौतिक दुःख कहते है।
   ग) आधिदैविक दुःख– आंधी–तूफान, भूकम्प, बिजली, सर्दी–गर्मी आदि दैवी करणो से जो पीडा होती है, उसे आधिदैविक दुःख कहते है।
2. **दौर्मनस्य–** मन की इच्छा पूर्ण न होने से मन मे जो क्षोभ उत्पन्न होता है।
3. **अंगमेजयत्व–** शरीर के अं–अवयवो का कंपित होना।
4. **श्वास–** श्वास प्रक्रिया पर नियंत्रण न हो पाने के कारण बाहर की वायु का नासिका मार्ग के अंदर प्रवेश कर जाना अर्थात् बार्हिकुंभक मे विघ्न हो जाना।
5. **प्रश्वास–** न चाहने पर भी (यौगिक क्रियाओ के समय) अंदर की वायु का बाहर निकल जाना (अंतरकुंभक मे विघ्न हो जाना) प्रश्वास।

इन पॉचो विघ्नो को उपविक्षेप भी कहते है, क्योकि मुख्य विक्षेप नौ है। स्वामी विवेकानन्द ने भी स्पष्ट करते हुए कहा है कि जब कभी एकाग्रता का अभ्यास किया जाता है, तभी मन और शरीर पूर्ण स्थिर भाव धारण करते है। जब साधना ठीक तरीके से नही होती, जब चित्त नियत नही रहता, तभी वे सब विघ्न उपस्थित हो जाते है। उधर तनिक भी ध्यान न देकर, साधना करते रहो। साधना से ही वे सब चले जाएंगे और तब आसन स्थिर हो जाएगा।

स्पष्ट है कि पूर्व वर्णित विक्षेपो के अलावा उनके रहने पर ही ये उपविक्षेप आते है अतः इन्हे ध्यान नही देने से भी साधना द्वारा वे दूर हो जायेगे।

चित्त प्रसादन के उपाय

प्रसादन का सामान्य अर्थ है– निर्मलता। अर्थात चित्त प्रसादन का तात्पर्य है– चित्त का निर्मल या एकाग्र करने का उपाय। महर्षि पतंजलि ने चित्त को निर्मल करने के अनेक उपायो का वर्णन किया है, जिसे चित्त प्रसादन कहा गया है। ये उपाय है–

1. चार भावनाएँ
2. प्राणायाम
3. दिव्यविषय
4. ज्योतिश्मती
5. वीतराग पुरूषो का ध्यान
6. स्वप्न

1. चार भावनाएँ

महर्षि पतंजलि के अनुसार

''मैत्री करूणामुदितोपेक्षाणां सुखदुःखपुण्यविशयाणां भावानातश्चित्तप्रसादनम्'' पा.यो.सूत्र 1/33

अर्थात सुख दुःख पुण्यापुण्य, पुण्यात्मा व आतमा क्रमशः जिन– गुणो के विषय है। ऐसे मैत्री, करूणा, मुदिता, प्रसन्नता एवं उपेक्षा की भावना से चित्त निर्मल हो जाता है। आनंदित व्यक्ति के प्रति मैत्री , दुखी व्यक्ति के प्रति करूणा, पुण्यवान के प्रति मुदिता तथा पापी के प्रति उपेक्षा, इन भावनाओ का संवर्धन करने से मन शांत हो जाता है।

व्यास भाष्य के अनुसार

इस प्रकार भावना करते करते शुक्ल धर्म उत्पन्न होता है जिससे चित्त प्रसन्न व निर्मल होता है। प्रसन्न चित्त एकाग्र होकर स्थितिपद पाता है।

आचार्य श्रीराम शर्मा जी के अनुसार

यदि कोई व्यक्ति सुखी है तो उसके सुख मे सुखी बनने का भाव ला कर उसके प्रति मित्रता का भाव रखना उचित है क्योकि सामान्यतया लोग दूसरे के सुख को देखकर ईर्ष्या करते है किंतु मित्र के सुख मे सुखी रहते है। इसी प्रकार दुःख के प्रति दया व करूणा का भाव रख कर उसकी सहायता करने के उपाय मे लग जाना चाहिये । क्योकि प्रायः यह देखा जाता है कि लोग दूसरो के दुःख मे सुखी होते है, पर यह होना चाहिये कि उन मे दया का भाव रख कर दुःख दूर करने का उपाय करे।

क) मैत्री– सुखी के प्रति मैत्री का भाव रखना चाहिए क्योकि सामान्यतया लोग किसी को सुखी देखकर ईर्ष्या करते है।

ख) करूणा– दुःखी के प्रति करूणा का भाव होना चाहिए तथा उनकी सहायता करनी चाहिए।

ग) मुदिता– अर्थात् प्रसन्नता। अच्छा कार्य करने वाले पुण्यात्मा लोगो के प्रति प्रसन्नता का भाव, प्रशंसा प्रोत्साहन देने का भाव होना चाहिए।

घ) उपेक्षा– दुरात्मा आदि जो हमे कष्ट पहुंचाने की चेष्टा करते है उनके प्रति क्रोध या बदले की भावना न रखकर उपेक्षा व उदासीनता का भाव रखना चाहिए।

अर्थात जैसे सुखी जनो मे–मै सुखी हूँ, ऐसा समझ कर उनके साथ प्रेम करे, न कि ईर्ष्या अर्थात उनकी बडाई का सहन न करना। दुःखियो को देख कर इनके दुःख की निवृत्ति कैसे हो? इस प्रकार दया ही करे न कि घृणा व तिरस्कार। पुण्य आत्माओ मे उनके पुण्य की बडाई करके अपनी प्रसन्नता ही प्रकट करे, पापियो मे उदासीनता व उपेक्षा धारण करे अर्थात उनके पाप मे सम्मति प्रकट करे न कि उनसे द्वेष करे।

जब इस प्रकार मैत्री आदि की भावना करने से चित्त प्रसन्न व निर्मल होता है, तब इससे समाधि प्रकट होती है इनके होने पर समाधि प्राप्त नही की जा सकती क्योकि ये चित्त के मल–विघ्न है।

2. **प्राणायाम–** प्राणायाम को दूसरे उपाय के रूप मे महर्षि पतंजलि ने बताया है–

प्रच्छर्दनविधारणाभ्यां वा प्राणस्य पा.यो.सूत्र 1/34

अर्थात प्राण का बारम्बार प्रच्छर्दन– बाहर निकलने बौर विधारण– बाहर रोकने का प्रयास करने से भी चित्त निर्मल हो जाता है।

स्वामी हरिहरानन्द

''चित्त की स्थिति के लिए चित्त का बंधन आवश्यक है ध्यान के साथ प्राणायाम न करने पर चित्त स्थिर नही होता, अपितु अधिक चंचल ही होता है। इसलिए प्रत्येक प्राणायाम मे श्वास के साथ चित्त का भी भावविशेष से एकाग्र करना पडता है। यह भी एक प्रकार की चित्त स्थिति है और इससे भी समाधि सिद्ध हो सकती है।'' श्वास के साथ एक ही प्रयत्न के द्वारा विक्षिप्त चित्त भी सहज रूप से ही आध्यात्मिक प्रदेश मे बद्ध होता है।

स्वामी विवेकानन्द ने भी इसे स्पष्ट करते हुए कहा है कि समस्त जगत मे जो ऊर्जा शक्ति व्याप्त हुई है, उसी का नाम है प्राण। चित्त यंत्रस्वरूप होकर चारो ओर से प्राण को भीतर खीचता है और उससे शरीर रक्षा करने वाली विभिन्न जीवनी शक्तियॉ तथा विचार, इच्छा एवं अन्यान्य सब शक्तियॉ उत्पन्न करता है। पूर्वोक्त प्राणायाम क्रिया से हम शरीर की समस्त भिन्न–भिन्न गतियो का तथा शरीर के अंतर्गत समस्त भिन्न–भिन्न स्त्रायविक शक्ति प्रवहो को वश मे ला सकते है।

प्राण जीवनी शक्ति है अतः प्राणायाम की क्रिया द्वारा हम चित्त को निर्मल बना सकते है क्योकि इसमे हम प्राण वायु को अन्दर खीचते है तत्पश्चात् श्वास बाहर निकाल कर वही रोकते है। यह विधारण कहलाता है। इससे चित्त एकाग्र होता है और वह निर्मल बन जाता है।

3. **दिव्य विषय–** महर्षि पतंजलि के अनुसार–

''विषयवती वा प्रवृत्ति रूत्पन्ना मनसः स्थितिनिबंधनी।'' पा.यो. सूत्र 1/35

विषयावली प्रवृत्ति उत्पन्न हो कर वह भी मन की स्थिति को बांधने वाली हो जाती है। अर्थात जब ध्यान के अभ्यास से (दिव्य विषयो का साक्षात कराने वाली) अर्तीद्रिय संवेदना उत्पन्न होती है, तो मन आत्मा विश्वास पाता है और इसके कारण साधना मे निरंतरता बनी रहती है।

व्यास भाष्य

शास्त्र अनुमान और आचार्ये द्वारा प्राप्त उपदेश मे संशय दूर करने के लिए किसी एक विशेष का प्रत्यक्ष करना आवश्यक होता है।

ये प्रवृत्तियॉ उत्पन्न होकर चित्त को स्थिति मे दृढ बद्ध करती है, संशय को नष्ट करती है और ये समाधिप्रज्ञा की द्वारस्वरूप होता है।

स्वामी विवेकानन्द

नासाग्र मे धारणा करने पर श्वास वायु मे ही जो एक प्रकार का अभूतपूर्ण सुगंधानुभव होता है सहज ही उसकी उपलब्धि की जा सकती है। जिह्वा आदि स्थानो पर धारणा करने से ज्ञानेन्द्रियो की सूक्ष्म शक्ति प्रकट होती है।

स्वामी ओमानंदतीर्थ

नासिका के अग्रभाग मे संयम की दृढता से जो दिव्य गंध का साक्षात्कार होता है उसको गंध प्रवृत्ति तथा जिह्वा के अग्रभाग के संयम की स्थिरता से जो दिव्य गंध का साक्षात्कार होता है, उसे रस प्रवृत्ति तथा रस संवित् तालू मे दिव्यरूप का साक्षात्कार होता है उससे रूप प्रवृत्ति और रूपसंवित जिह्वा के मध्य भाग मे संयम करने से जो दिव्य स्पर्श का साक्षात्कार होता है उसका नाम स्पर्श प्रवृत्ति और स्पर्श संवित् है।

जिह्वा के मूल मे संयम की दृढता से जो दिव्य शब्द का साक्षात्कार होता है, उसको शब्द प्रवृत्ति और शब्दसंवित् कहते है।

ये उत्पन्न चित्त की प्रवृत्तियॉ चित्त की स्थिति को बांधती है, संशय का नाश करती है, समाधिप्रज्ञा की उत्पत्ति मे द्वाररूप होती है।

आचार्य श्रीराम शर्मा

''उपर्युक्त उपायो के अतिरिक्त एक उपाय यह भी है कि विषयावाली प्रवृत्ति उत्पन्न होकर मन की स्थिति को बांधने मे समर्थ होती है। भावार्थ यह है कि इंद्रियो को विभिन्न विषय–शब्द, स्पर्श, रूप, रस व गंध से उत्पन्न साधना वृत्ति, मन की स्थिति का निरोध करती है।''

स्वामी विवेकानन्द

''यदि कोई अस्थिर चित्त व्यक्ति इस योग के कुछ साधनो का अवलंबन करना चाहे और फिर भी उनकी सच्चाई मे संदिग्ध चित्त हो, तो कुछ दिन साधना करने के बाद, ये सब अनुभूतियां होने पर, फिर उसे संदेह नही रहेगा। तब फिर वह अध्यवसाय के साथ साधना करता रहेगा।

इससे पूर्व महर्षि पतंजलि ने प्राणो का नियंत्रण अर्थात् प्राणायाम द्वारा चित्त–प्रसादन बताया था उसके अतिरिक्त उपयो मे उन्होने विभिन्न इद्रियो द्वारा उसकी अभीष्ट प्रवृत्ति, शक्तियो को जाग्रत कर उससे चित्त एकाग्र करने का उपाय बताया है। इन प्रवृत्तियो को विषयवली प्रवृत्ति कहते है।

4. **ज्योतिश्मती– ''विषोका वा ज्योतिश्मती''** पा.यो.सूत्र 1/36

अथवा इसके अतिरिक्त शोकरहित ज्योतिश्मति (प्रकाशवाला) वृत्ति मन को स्थिर करने वाली होती है। विषयवती प्रवृत्ति की भांति विषयो का वृत्ति मे हृत्पद्म मे मन को स्थिर किया जाता है।

यह विशोका प्रवृत्ति दो प्रकार की है– विषयवती तथा अस्मितामात्र।इनहे ज्योतिष्मती का जाता है। इनके द्वारा, योगी का चित्त स्थितिपद प्राप्त करता है।

सभी करणो मे या शरीर मे फैले हुए अभिमान का केन्द्र हृदय है। हृदयदेश को लक्ष्य कर, सर्वशरीर को स्थिर कर सर्वशरीर पर व्याप्त उस स्थिरता के बोध या प्रकाश भाव की भावना करनी पडती है।

विशोका

जब योगी उसमे बुद्धिविशयक संयम करता है, तब वह सात्विक ज्योति स्वरूप आकाश तुल्य भासता हुआ चित्त कभी सूर्य, कभी चंद्र, कभी नक्षत्र, कभी मणिप्रभा आदि रूप की आकृति वाला प्रतीत होता है फिर उस बुद्धितत्व का साक्षात्कार हो जाता है। यह ज्योतिःस्वरूप बुद्धि सत्व का साक्षात्कार ज्योतिश्मती प्रवृत्तिपद है। इसमे पूर्वोक्त सूर्यादि अनेक विषय रहते है इसलिए यह भी विषयवती है ओर सत्वगुण प्रधान होने से यह वृत्ति रजोगुण, तमोगुण से रहित है, इसलिए विशोका कहलाती है।

5. वीतराग पुरूषो का ध्यान–

''वीतरागविषयं वा चित्तम्'' पा.यो.सूत्र 1/37

अर्थात वीतराग पुरूषो का विषय करने वाला चित्त भी स्थिर हो जाता है अथवा विरगत वह है जिसके सभी राग, द्वेष, आसक्ति, आकांक्षाए समाप्त हो चुकी है।

स्वामी विवेकानन्द
यदि अपने चित्त को रागहीन अर्थात संकल्पहीन किया जा सके तो उस चित्तभाव को अभ्यास द्वारा स्थिर करने पर भी वीतराग विषयक चित्त होता है। किन्ही महापुरूषो या साधु को लो जो पूर्ण रूप से अनासक्त हो और जिन पर तुम्हारी अत्यंत श्रद्धा हो उनके हृदय के बारे मे चिंतन करो। उनका अंतःकरण सर्वविषयो से अनासक्त हो गया है, अतः उनके अंतःकरण के बारे मे चिंतन करने पर तुम्हारा अंतःकरण शान्त हो जायेगा।

स्वामी ओमानन्द
''जिन महान योगियो ने विषयो की अभिलाशा पूर्णतया छोड दी है जिसके कारण उनके चित्त से अविद्यादि क्लेशो के संस्कार मिट गये है, उनके चित्त का ध्याान करने वाले चित्त मे भी वैसे ही सात्विक संस्कार उत्पन्न होते है और वह सुगमता से एकाग्र हो जाते है

आचार्य श्रीराम शर्मा
'' जिनके राग–द्वेष विनष्ट हो चुके है ऐसे योगियो को ध्येय बनाकर अपना भाव वैसा ही बना करके अभ्यास करने वाला चित्त भी स्थिरता प्राप्त कर लेता है।
यदि पूर्वाक्त उपाय न बन पडे तो शुद्ध, सत्वयुक्त चित्त के स्वप्र द्वारा भी चित्त एकाग्र हो सकता है जिसे अतिरिक्त उपाय के रूप मे महर्षि पंतंजलि बताते है।

6. स्वप्र–

''स्वप्ननिद्राज्ञानालंबन वा'' पा.यो.सूत्र 1/38

अर्थात स्वप्र–ज्ञाान तथा निद्रा–ज्ञान का आलंबन करने वाला चित्त भी स्थिति पद पाता है।

स्वमी हरिहरानंद
स्वप्रकाल मे बाह्य ज्ञान अवरूद्ध होता है एवं मानस भावसमूह प्रत्यक्ष से प्रतीत होते है। अतएव इस प्रकार के ज्ञान का आलंबन करके ध्यान करना ही स्वप्रज्ञानालंबन है।

यह तीन प्रकार के उपाय से प्राप्त होता है
1. ध्येय विषय की मानस प्रतिमा गढकर उसका प्रत्यक्षवत देखने का अभ्यास करना होता है।
2. स्मरण का अभ्यास करने से स्वप्रकाल मे भी ''मै'' स्वप्र देख रहा हुॅ। यह स्मरण होता है।तब अभीष्ट विषय का भावानुकूल ध्यान करना होता है और जागकर तथा अन्य समय भी उसी प्रकार का भाव रखने की चेष्टा करनी पडती है।
3. स्वप्र मे कोई उत्तम भाव प्राप्त होने पर जाग्रत अवस्था मे तथा पीछे भी उसी भाव का ध्यान करना चाहिए।

स्वामी ओमानंदतीर्थ
''जाग्रत अवस्था मे चित्त मे रजोगुण प्रधान होता है, इस कारण वृत्तियॉ बहिर्मुख होता है। निद्रा मे तमोगुण रजोगुण को प्रधान रूप मे पूर्णतया दबा लेता है, इस कारण उस समय केवल आभाव की प्रतीति कराने वाली वृत्ति रहती है। लेकिन सत्वगुण की प्रधानता से एकाग्रता उत्पन्न करनी चाहिए, जिससे वस्तु का यथार्थ ज्ञान प्राप्त हो। इस प्रकार स्वप्र और निद्रा के ज्ञान का आलंबन करने से मन स्थिर हो जाता है।''
कई बार ऐसा होता है कि स्वप्रमे जो आलौकि पदार्थ देखे जाते है, उससे भी चित्त को बहुत आनंद होता है। कई बार ऐसा जाग्रत अवस्था मे भी नही हो पाता जैसे किसी इष्टदेव, गुरूदेव के दर्शन होना, योगी अथवा महापुरूष हो जाना।
ऐसे स्वप्रो को याद करने अर्थात वैसा ही भाव बाद मे मन मे करने से भी मन स्थिर हो जाता है। इस स्वप्र और निद्रा के आश्रय का एक अर्थ यह भी हो सकता है कि स्वप्र और सुशुप्तावस्था मे जाग्रत विषय का ज्ञान एवं इद्रियो का चांचल्य नष्टप्राय हो जाता है। इसी प्रकार का आश्रय लेने से बाह्य वृत्तियॉ विनष्ट हो जाती है और चित्त स्थिर हो जाता है।

स्वमी शिवानन्द
कभी–कभी मनुष्य ऐसा स्वप्र देखता है कि उसके पास देवता आकर बातचीत कर रहे है, वह मनो एक प्रकार से भावावेश मे चूर हो गया है, वायु मे एक अपूर्ण संगीत की ध्वनि बहती हुई चली आ रही है और वह उसे सुन रहा है।जब वह जागता है तब स्वप्र की वे घटनाएं उसके मन पर एक गहरी छाप छोड जाती है। उस स्वप्र को सत्य मानकर उसका ध्यान करो''।
महर्षि पतंजलि ने स्वप्र के माध्यम से चित्त एकाग्र करने को कहा है। स्वप्र मे कभी–कभी दिव्य अनुभूतियॉ होती है, वह दिव्य दृष्य दिखाई देते है अतः उन क्षणो को जाग्रतावस्था मे रखकर उनका ध्यान करना चाहिए। सत्व गुण के प्रधान होने के कारण दिव्य संस्कार का प्रभाव चित्त पर पडता है। इस प्रकार वह चित्त मे एकाग्रता उत्पन्न करता है। स्वप्र व निद्रा का आलंबन भी लिया जा सकता है।
अंत मे महर्षि पतंजलि साधक को सुविधानुसार ध्यान करने को कहते है।

''यथाभिमतध्यानाद्वा'' पा.यो.सूत्र 1/39

अर्थात जिसका जैसा अभिमत हो उसके ध्यान से भी। (मन स्थिर हो जाता है)

महर्षि व्यास
जो भी ईष्ट (अवष्य ही योग को लक्ष्य कर) है, उसका ध्यान करें। उसमे स्थिति लाभ करने पर अन्यत्र भी स्थिति लाभ होता है।

स्वमी हरिहरानंद
चित्त का ऐसा स्वभाव है कि वह किसी एक विषय पर यदि स्थैर्य लाभ करे तो अन्य विषय पर भी कर सकता है। अतएव यथाभिमत ध्यान द्वारा चित को स्थिर कर संपूर्ण तत्वो मे समाहित होकर तत्वज्ञान के क्रम मे कैवल्यसिद्धि हो सकती है।
मनुष्यो की रूचियां, भिन्न–भिन्न से जिस वस्तु की अधिक रूचि हो, जिसकी जिसमे शास्त्रीय मर्यादानुसार सात्विक श्रद्धा हो, उसमे ध्यान लगाने से चित्त एकाग्र हो जाता है।

पूर्वोक्त उपय मे से कोई उपाय अनुकूल न हो तो साधक अपनी इच्छा से चयनित अथवा अपने निर्धारित इष्टदेव के फलस्वरूप का ध्यान करने का अभ्यास करे। इसमे भी स्थिर हो सकता है।
सार रूप मे चित्त को स्थिर करने के लिए मन किसी स्थूल मूर्ति मे एकाग्र करना चाहिए, जो साधक को बहुत प्रिय हो। वह मूर्ति किसी देवता, गुरू, आदि किसी की भी हो सकती है क्यो कि स्थूल पदार्थ मे मन जलदी एकाग्र हो जाता है।

स्वामी विवेकानन्द

जो कोई भली वस्तु तुम्हे अच्छी लगे, जो स्थान तुम्हे पंसन्द हो, जो दृष्य था जो भाव तुम्हे बहुत अच्छा लगता है, जिससे तुम्हारा चित्त एकाग्र हो जाता है, उसी का चिंतन करो।
इसलिए महर्शि पतंजलि ने अंत मे साधक को अपने अनुसार चित्त स्थिर करने हेतु उपर्युक्त उपाय करने को कहा है, क्यो कि उससे भी चित्त स्थिर हो जाता है।
चित्त अन्तराय हमारे चित्त की वृत्तियो के परिणाम है। योग मार्ग के अतिरिक्त हमारे व्यावहारिकजीवन मे भी विभिन्न प्रकार की वृत्तियो के कारण विघ्न–बाधाएं आती रहती है। महर्षि पतंजलि ने अपने अन्तरायो मे उन सभी विघ्नो के फलस्वरूप होने वाले परिणाम के संदर्भ मे भी वह स्पष्ट करते है और इन विघ्नो के समाधान हेतु मैत्री, करूणा, मुदिता, उपेक्षा व प्राणायाम, स्वप्र, निद्रा आदि विधियो का चित्त प्रसादन के रूप मे वर्णन करते है और अंत मे स्पष्ट करते है कि जिसका जैसा मत हो वह उसी के अनुरूप उपाय कर सकता है।

संदर्भ

1. स्वामी ओमानंद तीर्थ पाताजलयोगप्रदीप गीता प्रेस गोरखपुर उ0प्र0 पेज 217
2. वही पेज 218
3. वही पेज 225
4. वही पेज 249
5. वही पेज 251
6. वही पेज 253
7. वही पेज 254
8. स्वामी दिगम्बर जी– हठप्रदीपिका– कैवल्यधाम, स्वमी कुवल्यानंद मार्ग लोनावला पुणे महाराष्ट्र 2017
9. जयसवाल सीताराम भारतीय मनोविज्ञान आर्य बुक डिपो नई दिल्ली 1987
10. आत्रेय शांन्ति प्रकाश योग मनोविज्ञान काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी
11. भारद्वाज ईश्वर, मानव चेतना– सत्यम प्रकाशन हाउस दिल्ली 2011
12. शास्त्री गिरीजाशंकर – वशिष्ट संहिता, चौखंभा प्रकाशन वाराणसी
13. गीता प्रेस, गोरखपुर योग वाशिष्ट, गीता प्रेस, गोरखपुर 2016
14. गीता प्रेस गोरखपुर भागवत नवनीत गीता प्रेस, गोरखपुर 2015
15. सानुवाद– शंकर भाष्य वेदान्त दर्शन गीता प्रेस, गोरखपुर 2016
16. त्रिलोक चंद– अध्यात्म सिंद्धांत न्यू भारतीय बुक दिल्ली 2014